

Bankruptcy code no magic wand

ET Editorials



It is a good thing the RBI and the banks have started identifying big loan defaulters, to resolve these bad loans. True, the new bankruptcy code offers a finite window for the resolution of bad loans, far swifter than under the erstwhile Board for Industrial and Financial Reconstruction. However, it would be naïve to expect solutions overnight. Under the code, an insolvency petition can be filed after a single default without giving any notice, and within 180 days, lenders and borrowers have to find a way to revive the company, failing which the process for auctioning of assets begins.

A quicker way is for the banks to sell their bad loans to asset reconstruction companies (ARCs), who could then undertake the tedious task of resolving bad loans. This way, the banks get their debt burden off their back and can resume lending. Of course, they would have to take a haircut and sell their bad assets to ARCs at a discount, and get additional capital to underwrite the impact. ARCs can then decide how to restructure the companies underlying the assets that they buy. The options include providing funds to run the company or putting the insolvency code to use. Many benches need to be set up quickly for the adjudicating authority — debt recovery tribunals for individuals and unlimited liability partnership firms, and the National Company Law Tribunal for companies and limited liabilities — as they have to take a final decision to accept or reject the insolvency resolution plan. Insolvency professionals must be mobilised and deployed. And the legal infrastructure must be made functional, to thwart attempts to stymie resolution through stays. If all these things are done, we can see some rapid progress in resolving the bad loan problem. The crucial step is to let banks take a haircut without that leading to a witch hunt.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-06-17

भयावह प्रतीत होती नई विश्व व्यवस्था

अमेरिका के नेतृत्व वाली वैश्विक आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था को ट्रंप प्रशासन के चलते गहरी चुनौती का सामना करना पड़ा है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं शंकर आचार्य

(लेखक इक्रियर में मानद प्रोफेसर और देश के पूर्व मुख्य आर्थिक सलाहकार हैं। लेख में प्रस्तुत विचार निजी हैं।)

क्या डॉनल्ड ट्रंप के अमेरिका का राष्ट्रपति बनने के बाद के शुरुआती पांच महीने हमें वैश्विक आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के एक डरावने दौर में ले जा चुके हैं। मुझे तो यही लगता है। व्यापक संदर्भ में बात करें तो दूसरे विश्वयुद्ध के समापन के बाद 70 वर्ष बीत चुके हैं और इस बीच एक उदार वैश्विक आर्थिक व्यवस्था का उदय हुआ। इससे व्यापार, पूंजी की आवक और एक हद तक कुशल श्रम को मदद मिली। इस दौरान



उभरती अर्थव्यवस्था वाले देशों का आर्थिक विकास भी हुआ। उनमें से कई इससे पहले औपनिवेशिक शासन के अधीन थे। इस व्यवस्था को लाने में कई अंतरराष्ट्रीय संस्थानों ने मदद की। इनकी स्थापना दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी नेतृत्व में ही हुई थी। इनमें अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ), विश्व बैंक, जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ्स ऐंड ट्रेड (गैट) और उसके बाद विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ)। गैट और डब्ल्यूटीओ ने बहुपक्षीय व्यापार समझौते के कई दौर देखे जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात दुनिया में वैश्वीकरण और अप्रत्याशित वैश्विक आर्थिक वृद्धि की राह आसान की।

पश्चिमी गठजोड़ के उदय के बाद इसे मजबूती मिली। इस गठजोड़ का नेतृत्व अमेरिका के पास था और इसमें पश्चिमी यूरोप के देशों के अलावा जापान भी शामिल था। कई लोगों ने इन सात दशकों को अमेरिका के दशक घोषित किया क्योंकि अमेरिकी आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य नेतृत्व का पूरा रसूख इस दौरान बरकरार रहा। खासतौर पर सोवियत रूस के विभाजन के बाद ऐसा देखने को मिला। अमेरिकी रसूख के दौरान केवल शांति और समृद्धि ही एजेंडे पर नहीं रहे बल्कि अमेरिका ने अपने हितों के लिए कई लंबे युद्ध लड़े और लैटिन अमेरिका तथा पश्चिम एशिया में कई देशों में अनधिकृत और गैरजरूरी हस्तक्षेप भी किया। परंतु यह मानना होगा कि अमेरिकी नेतृत्व वाले गठजोड़ और उदार आर्थिक नीति वाली व्यवस्था के चलते अंतरराष्ट्रीय व्यापार और आर्थिक समृद्धि में अप्रत्याशित इजाफा देखने को मिला। यह इजाफा विकसित और विकासशील सभी तरह के देशों में हुआ। यूरोप और पूर्वी एशियाई देशों को इसका खास लाभ हुआ। इनमें से एक देश चीन तो दुनिया में सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है और अमेरिका को चुनौती दे रहा है।

परंतु विभिन्न कारकों ने इन दोनों व्यवस्थाओं पर दबाव बनाया और बीते दो दशक से ये तनाव में हैं। इसमें बढ़ती इस्लामिक जिहादी गतिविधियां जिसमें अमेरिका पर हुआ हमला शामिल है, के अलावा अफगानिस्तान और इराक में लंबी चली जंग, वैश्विक वित्तीय संकट और मंदी तथा बड़े देशों पर इसके नकारात्मक प्रभाव आदि शामिल हैं। इसके अलावा अमेरिका तथा कई यूरोपीय देशों में आर्थिक असमानता बढ़ी, राजनीतिक ध्रुवीकरण हुआ और पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका से शरणार्थियों की बाढ़ आई क्योंकि उनके मुल्क तबाह हो चुके हैं। चीन के अप्रत्याशित उभार और उसकी हालिया मंदी तथा ब्रेक्सिट जैसी तमाम घटनाएं जिम्मेदार हैं।

इन तमाम दिक्कतों के बावजूद वैश्विक अर्थव्यवस्था और विश्व व्यापार में पिछले साल फिर से गति आनी शुरू हो गई। जलवायु परिवर्तन से निपटने की नीतियों से जुड़ा पेरिस समझौता कमजोर होने के बावजूद 2015 के आखिर तक निपट गया और नवंबर 2016 से इसका प्रवर्तन शुरू हो गया। अटलांटिक पार साझेदारी (टीपीपी) समझौता भी फरवरी 2016 में संपन्न हो गया। लेकिन जनवरी में ट्रंप के अमेरिकी राष्ट्रपति बनते ही यह पूरा परिदृश्य बदल गया। बीते पांच माह में ट्रंप प्रशासन की कुछ नीतियों और घोषणाओं पर नजर डालते हैं।

वैश्विक व्यापार: अमेरिका महज तीन दिन के भीतर ही टीपीपी से अलग हो गया। इससे एशियाई आर्थिक मामलों में उसकी संभावित भूमिका सीमित हुई और चीन के दबदबे की राह प्रशस्त हुई। उत्तरी अटलांटिक मुक्त व्यापार समझौते को भी चुनौती मिल रही है। ट्रंप ने कई ऐसी घोषणाएं कीं जो व्यापार विरोधी हैं। इससे यह संकेत गया कि वह बहुपक्षीय के बदले द्विपक्षीय व्यवस्था के पक्षधर हैं। हालांकि अमेरिका-चीन व्यापार युद्ध को मिला शुरुआती जोखिम कम हुआ है लेकिन वह कभी भी दोबारा पनप सकता है। डब्ल्यूटीओ के लिए भी बहुत अधिक सहयोगी रुख देखने को नहीं मिला है।

शांति और सुरक्षा: पश्चिमी गठजोड़ को सबसे बड़ा झटका तब लगा जब गत मई में ब्रसेल्स में आयोजित नाटो शिखर बैठक में ट्रंप इस संधि के अनुच्छेद 5 को आगे बढ़ाने में नाकाम रहे। यह अनुच्छेद नाटो के सभी सहयोगियों को एक दूसरे से आबद्ध करता है कि वे किसी भी सदस्य पर

हमला होने की स्थिति में मदद के लिए आगे आए। इसके बाद पेरिस जलवायु समझौते में उन्होंने वाक्यलिखित दिखाया। जर्मनी की चांसलर एंगेला मर्केल ने कहा कि यूरोप अब अमेरिका पर निर्भर नहीं रह गया है। इससे कुछ दिन पहले ट्रंप ने ईरान के साथ प्रतिद्वंद्विता में खुलकर सऊदी अरब के प्रति सहयोग जाहिर किया था। ऐसा तब था जबकि सऊदी अरब बीते चार दशक से दुनिया भर में वहाबी चरमपंथ का प्रसार करने के लिए जाना जाता है। शिया-सुन्नी विवाद में इस तरह पक्षधर बनने के अलावा ट्रंप ने शायद अमेरिका को भविष्य की आतंकी चुनौतियों के लिए जोखिम में डाल दिया हो। कतर में अमेरिका का एक बड़ा सैन्य अड्डा है लेकिन उसे लेकर अमेरिका के नीतिगत वक्तव्य भी भ्रामक हैं।

वैश्विक बेहतरि: अतीत में अमेरिका ने सार्वजनिक रूप से वैश्विक हित के कामों में नेतृत्वकारी भूमिका निभाई है। ट्रंप ने 1 जून को घोषणा कर दी कि अमेरिका पेरिस जलवायु वार्ता से अपने आपको अलग कर रहा है। जाहिर है इससे वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन से लड़ाई कमजोर हुई। उनके प्रशासन ने पहले ही कई कार्यकारी आदेश जारी कर दिए हैं जिनकी मदद से कोयला खनन, पाइप लाइन निर्माण आदि को आसान बना दिया गया है। इस तरह पिछले ओबामा प्रशासन द्वारा लिए गए कार्बन उत्सर्जन से निपटने संबंधी फैसले पलट दिए गए। अमेरिकी नेतृत्व में अन्य सार्वजनिक कामों मसलन समुद्री संरक्षण और संचारी रोगों को लेकर उठाए जाने वाले कदमों पर भी संदेह के बादल हैं। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि अंतरराष्ट्रीय मामलों के जानकार जॉन आइकनबरी लिखते हैं, 'दुनिया का सबसे ताकतवर देश अपनी ही बनाई व्यवस्था को नुकसान पहुंचा रहा है। पूरे परिदृश्य में एक प्रतिकूल संशोधनवादी ताकत दिख रही है जो ओवल कार्यालय में स्थित है। उस जगह जो मुक्त विश्व व्यवस्था की धड़कन है।' (फॉरेन अफेयर्स, मई-जून 2017)

जनसत्ता

Date: 21-06-17

कुपोषित विकास

संपादकीय



इससे अफसोसनाक तस्वीर क्या होगी कि एक ओर देश के तेजी से विकास करने का दम भरा जा रहा है और दूसरी ओर हर साल हजारों लोगों और बच्चों की जान सिर्फ इसलिए जा रही है कि उन्हें पर्याप्त पोषणयुक्त भोजन नहीं मिल पाता है। यह हकीकत भारत के एक ऐसे राज्य के आदिवासी इलाकों की है, जिसकी गिनती देश के अपेक्षया संपन्न राज्यों में होती है। मुंबई हाईकोर्ट ने मंगलवार को महाराष्ट्र की फडणवीस सरकार को फटकार लगाते हुए कहा कि वह कुपोषण के मसले पर न खुद चिंतित है, न अदालत के आदेशों की उसे कोई फिक्र है। अदालत ने साफ लहजे में कहा कि महाराष्ट्र के जनजातीय इलाकों में कुपोषण से होने

वाली मौतें किसानों पर मंडराते उस संकट से कम त्रासद नहीं हैं, जिसके चलते सरकार को कर्जमाफी जैसे उपाय अपनाने पड़े हैं। गौरतलब है कि मुंबई हाईकोर्ट ने करीब आठ महीने पहले इसी मसले पर राज्य सरकार को फटकार लगाते हुए निर्देश दिया था कि वह आदिवासियों के कल्याण के लिए बने कानून और योजनाओं पर तुरंत अमल सुनिश्चित करके कोर्ट को बताए। लेकिन सरकार के रवैये का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इतना वक्त गुजरने के बाद अब अदालत को फिर से दो महीने के भीतर पहले के आदेशों पर अमल का निर्देश जारी करना पड़ा

हाैदेश की आर्थिक राजधानी के तौर पर मशहूर मुंबई से महज सौ किलोमीटर की दूरी पर स्थित नंदुरबार, धुले और मालघाट जैसे आदिवासी इलाकों में पिछले करीब डेढ़ दशक से कुपोषण से होने वाली मौतों की त्रासदी लगातार बनी हुई है। राज्य में कुपोषण के चलते हर साल ग्यारह हजार लोगों की जान जा रही है। इनमें ज्यादातर संख्या नवजात बच्चों की है, जिनकी मौत जन्म के बाद एक महीने के भीतर हो जाती है। यह हालत दरअसल बहुस्तरीय कोताही का नतीजा है। सरकारी योजनाओं पर अमल में लापरवाही और संवेदनहीनता से लेकर चिकित्सा के मोर्चे पर घोर अव्यवस्था ने हालात को ज्यादा शोचनीय बना दिया है। इस मामले पर मुंबई हाईकोर्ट में रिपोर्ट पेश करने वाले डॉ अभय बंग ने बताया कि हर साल लगभग दो हजार मेडिकल के विद्यार्थी पलायन कर दूसरे शहरों में चले जाते हैं; ग्रामीण इलाकों में डॉक्टर काम नहीं करना चाहते और सरकारी बॉन्ड के उल्लंघन पर भी उनसे जुर्माना नहीं वसूला जाता। इस वजह से राज्य सरकार को न सिर्फ नौ सौ करोड़ रुपए का नुकसान हो चुका है, बल्कि डॉक्टरों की अनुपलब्धता का खमियाजा सबसे ज्यादा संबंधित इलाकों के आदिवासियों को भुगतना पड़ता है। कई अध्ययनों में ये तथ्य आ चुके हैं कि देश के चालीस से पैंतालीस फीसद बच्चे कुपोषण के शिकार हैं और हर साल लाखों बच्चे इस वजह से मौत के मुंह में चले जाते हैं। एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम से लेकर मिड-डे मील जैसी कुपोषण निवारक योजनाएं अपर्याप्त आबंटन तथा भ्रष्टाचार, दोनों की शिकार हैं, और इसलिए बेमानी साबित हो रही हैं। कुछ साल पहले तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कुपोषण को राष्ट्रीय कलंक कहा था। लेकिन उनके दस साल के कार्यकाल में वह कलंक वैसा का वैसा बना रहा। अब भी वैसा ही बना हुआ है। जबकि हमारे संविधान के अनुच्छेद इक्कीस ने जीने की गारंटी दे रखी है।



THE HINDU

Date: 21-06-17

Bringing GM to the table

Promoters of GM food need to reach out to consumers in a transparent, engaging manner

Rama Mohana R. Turaga teaches public policy and sustainability at the Indian Institute of Management, Ahmedabad. The views expressed are personal

On May 11, 2017, the Genetic Engineering Appraisal Committee (GEAC) — the scientific committee of the Ministry of Environment, Forests and Climate Change — that regulates genetically modified (GM) crops in India — had cleared GM mustard for commercial production. Anti-GM groups immediately opposed the decision and appealed to the Minister for Environment, who gives the final clearance, not to accept the GEAC's recommendation.

Issues at core of opposition

The question of whether India should allow commercial production of GM crops has been one of the more enduring public policy debates over the last decade-and-a-half. After the approval of Bt cotton in 2002, the attempt to bring Bt Brinjal into commercial production faced serious resistance in 2010. After the GEAC approved Bt brinjal for commercial production, the then Environment Minister, Jairam Ramesh, placed a moratorium after undertaking extensive public consultation. Proponents of GM crops, including Noble

laureates, insist that opposition to GM crops is driven by irrational fears of harm to human health and having an environmental impact and accuse opposing environmental groups of misrepresenting facts. Such arguments, however, are unlikely to convince the opponents of GM crops. While the debate is complex, involving a wide range of scientific, socio-economic, and political factors, it is important to understand two related issues that are fundamental to the opposition: invoking the precautionary principle for regulatory decision-making and a lack of trust in government and industry that promotes and benefits from GM technologies.

One of the principal reasons for opposition to GM crops is the potential for serious, irreversible damage to human health and the environment. This is especially relevant in the context of crops such as Bt brinjal which involve direct consumption by humans, unlike Bt cotton. The widespread havoc that chemical pesticides and fertilizers have caused since the Green Revolution only adds credence to these concerns. While GM supporters claim that there is little scientific evidence of adverse impacts so far, GM opponents cite the need for longer term assessment of adverse impacts and more concrete evidence of no adverse effects. Implicitly, GM opponents are invoking the precautionary principle, which is a widely incorporated one in several international agreements and treaties on the environment. In the context of technologies such as GM crops, where there is significant scientific uncertainty over their safety, the precautionary principle suggests that we wait until a broader scientific consensus is achieved. For example, regulations in Europe, where GM crops face similar opposition, explicitly invoke the precautionary principle as the basis for deciding whether GM foods should be allowed.

Lack of transparency

The lack of transparency in the regulatory process further amplifies apprehensions stemming from a precautionary approach. All the safety tests for regulatory approvals are typically conducted by the same party that applies for commercialisation of GM crops — whether it is Mahyco on Bt brinjal or Delhi University on GM mustard. This conflict of interest was made worse by the refusal of GEAC (in both cases) to publicly release the safety testing data submitted for regulatory approval until GM opponents filed a Right to Information petition. This tendency to operate in secrecy has not only created a serious distrust of the government and the promoters of GM crops but is also fuelling the conflict. Extensive research on public acceptance of GM foods in the European context identifies trust in regulatory agencies and industry as being a critical factor in public willingness to accept GM technology.

In a well-articulated decision letter at the time of rejecting Bt brinjal, the then Environment Minister, Jairam Ramesh, outlined the need for the GEAC “to draw up a fresh protocol for the specific tests that will have to be conducted in order to generate public confidence”. The GM mustard case does not provide much evidence that anything has changed since the moratorium on Bt brinjal.

If there is a genuine case to be made to allow GM crops to improve yields and address India’s food security, GM supporters might want to start cultivating an environment of openness and transparency to allay genuine fears instead of dismissing GM opponents as being “irrational”. On its part, the government should adopt a participatory approach to bring together all stakeholders to develop regulatory protocols that restore trust in the process. The burden of proof lies with the promoters of GM technology to persuade consumers, farmers and activists that among various alternatives available for sustainable food production — e.g., organic farming, use of biopesticides — GM technology is at least a serious option that we should embrace
